JETIR.ORG ISSN: 2349-5162 | ESTD Year : 2014 | Monthly Issue
JOURNAL OF EMERGING TECHNOLOGIES AND INNOVATIVE RESEARCH (JETIR)
An International Scholarly Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

हिंदी उपन्यास में पर्यावरणीय चेतना और विस्थापन की समस्या(विशेष सन्दर्भ:- "मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ")

Manju Gupta, Dr. Hukumchand Yadav

भूमिका:-

भारतवर्ष की सामाजिक और सांस्कृतिक संरचना अनेकवर्णी है। अनेक धर्म, संप्रदाय, पंथ, संस्कृतियाँ, जातियाँ-जनजातियाँ तथा विभिन्न मान्यताएँ यहाँ की विविधता में जान फूँकती हैं। आदिवासी समुदाय भी इसी वैविध्यता का एक अंग है जो विशेष पर्यावरण में अपने सामाजिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों को जान की क़ीमत पर सँजोए हुए है। आदिवासी समाज प्रकृतिनिष्ठ, प्रकृति निर्भर तथा सामूहिक वैशिष्ट्यता के वैभव से परिपूर्ण है परन्तु वर्तमान में लाचार, अन्यायग्रस्त तथा पशुवत जीवन यापन करने के लिए अभिशप्त है। प्रकृति के सान्निध्य की महत्ता को हमारे ऋषियों ने बहुत पहले जाना था और आदिवासियों ने उससे भी पहले जाना था।

सही अर्थों में आदिवासी आर्यों से भी पूर्व के मानव समूह हैं। वे इस भूमि के मूल-मालिक हैं। सही अर्थों में क्षेत्राधिपति हैं। इसलिए कुछ विद्वानने उन्हें '**अबॉरिजनल**' कहकर संबोधित किया है।[१] आदिवासियों का जीवन आज भी पूरी तरह प्रकृति के रंग में रचा-बसा है। प्रकृति सच्चे अर्थ में उनके लिए देवी, माँ, सहचरी और प्राण है। प्रकृति से उनका नेह लगाव किताबी ज्ञान पर आधारित नहीं है, वरन वे स्वयं प्रकृति प्रेम के सजीव महाकाव्य हैं।

प्रस्तावना:-आज मनुष्य विज्ञान और प्रौद्योगिकी और सूचना तकनीक के जरिए तीव्रता के साथ लंबी और ऊंची छलांग लगाते हुए लगातार दूरियां तय कर रहा है। और उसी अनुपात में प्रकृति के साथ छेड़छाड़ करते हुए जिन उपलब्धियों पर इतरा रहा है वही विभीषिका और त्रासदी के रूप में कब उसके सामने आ जाये वह नहीं जानता।

भूमंडलीकरण के दौर में तथाकथित विकास के नाम पर वनों की अंधाधुंध कटाई, नदियों की गति ओर दिशाओं में मनमाना परिवर्तन, औद्योगीकरण और शहरीकरण, खनिज उत्खनन के नाम पर प्रकृति का जरूरत से ज्यादा दोहन, जैवविविधता का क्रमिक हास्य मनुष्य के सभ्य होते चले जाने का बर्बर इतिहास है।

अंतर्राष्ट्रीय कंपनियां प्रतियोगिता मैं ही की कौन कामगारों का सबसे अधिक शोषण और पर्यावरण को सबसे अधिक बर्बाद कर सकता है। विकास का अर्थ है पर्यावरण का विनाश और व्यक्ति का मानवीकरण। आज एक रेखिए विकास से होकर मनुष्य जल जंगल जमीन को नष्ट करता जा रहा है आदिवासी चिंतक ब्रज लाल के शब्दों में –"आसमान फटा जा रहा है और हुक्मरान थिगड़े लगाने की बात कर रहे हैं"।तथकथित विकास के नाम पर आज राजनेताओं और उद्योगपतियों के गठजोड़ ने जंगलों में रहने वाले आदिवासी समुदायों का

विस्थापन का गहरा असर संकट झेलने पर मजबूर कर दिया है। जंगलों को अंधाधुंध कटाई, उत्खनन आदि से विकिकरण, प्रदूषण और विस्थापन की समस्या बढ़ती जा रही है।

'मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ' उपन्यास में आदिवासियों और प्रकृति की अंतरंगता का एक विस्तृत और रोचक वर्णन है, यह कि, जिनके संस्कार यहीं से उत्पन्न हुए हैं, जिनकी आत्मा सारंडा के जंगलों में बसती है, पल-पल उसी प्रकृति की अनुभूति जिनकी उत्सवधर्मिता है। तभी तो जाम्बीरा को इस 'सात सौ पहाड़ियों वाले जंगल' के एक-एक वृक्ष से प्यार था। अनायास वे वृक्ष उसे जातीय लगाव का एहसास कराते थे, **'ऊंचे-ऊंचे, मोटे-मोटे साल! तमाम जंगलों के साल वृक्षों की लंबाई को मात देते साल! करीब एक सौ चालीस, एक सौ पचास फुट ऊँचे साल! उसके पुरखों की वास भूमि के साल! उनका पवित्र सरजोम!'**[२] इतना ही नहीं, इस जंगल में कुछ विशेषताएँ थीं जो जाम्बीरा को वन देवता के प्रति आस्था की राह दिखाती थीं। वह अपने पोते किशोर सगेन को समझाता कि **'वन देवता की कृपा है इस जंगल पर। आसपास के सभी जंगलों से पहले बारिश हो जाती है यहाँ। बरसात से पहले ही। साल के बीज गिरने के चार पहर के अंदर-अंदर। मध्य बैशाख में ही.....'**[३]

आज पूरे विश्व के पर्यावरणविद पर्यावरण सुरक्षा और संरक्षा को लेकर बेहद चिंतित हैं। चिंता स्वाभाविक है। निरंतर असंतुलित होते जा रहे पर्यावरण के परिणाम प्रत्यक्ष रूप से घटित होने लगे हैं। ऐसे में तरह-तरह के उपाय विश्व की बौद्धिक बिरादरी के द्वारा किए जा रहे हैं। 'ग्लोबल वार्मिंग' को कम करने के लिए तमाम प्रकार के सम्मेलन, वार्ताएँ आयोजित की जा रही हैं तथा उन पर करोड़ो डॉलर व्यय किए जा रहे हैं। परंतु इतने प्रयत्न के बाद भी तथाकथित सभ्य और आधुनिक भी जिस समस्या का हल नहीं ढूँढ पाते, उसका ज्ञान तो यहाँ के सामान्य लोगों तक में होता है। फॉरेस्ट गार्ड सगेन को बताता है, **'साल के पेड़ों में अपनी लंबाई के छः गुना अधिक ऊँचाई तक के इलाक़े को ठंडा रखने की क्षमता होती है। यानी एक सौ चालीस फीट, एक सौ पचास फीट से छः गुना ऊपर तक के आसमान को ठंड से ठिठुरने पर विवश कर देते हैं, सारंडा के साल।'**[४]और यही सारंडा का जंगल है जिसने उन्हें रहने के लिए शरण दी वह भी एक दो नहीं, पूरा जंगल उनका है. जहाँ चाहे वहाँ रह सकते हैं, तभी तो जाम्बीरा और रिमिल को भटकते हुए भी यह विश्वास था कि जल्द ही उन्हें कोई गुफा मिल जाएगी। **"सारंडा के इस जंगल में गुफाओं की क्या कमी? कितनी ही बार शिकार करते समय जानवरों का पीछा करते हुए या जानवरों द्वारा खदेड़े जाने पर गुफाओं में आकर छुपना पड़ा है उन्हें। जंगल में अँधेरा हो जाने पर रात बितानी पड़ी है गुफाओं में।"**[५] और खाने के लिए पेताडु, केंदु के फल और शिकार के रूप में जीव-जन्तु. सगेन बचपन से सुनता आया है अपने पूर्वजों की शिकारी प्रवृत्ति के बारे में **"जब पेड़ के ऊपर बैठे-बैठे उसके पुरखे तीर चलाया करते... जब तक पेड़ से कूदकर दूसरे में, दूसरे से तीसरे में, तीसरे से चौथे में और इसी तरह जंगल की खाक छानते शिकार की खोज में।'**[६] आदिवासी आज भी स्वस्थ वन्य परंपरा के वाहक हैं। उनकी संस्कृति पेड़ों की जड़ों से विकसित होती है। उनके रीति-रिवाज फूलों-पत्तों से शुरू होकर नदियों, पहाड़ों पर आ कर पहुँचते हैं। गुफाओं की दीवारें आज भी उनके बड़े कैनवास हैं और उनका संगीत मोर और पपीहों के संग उतार-चढ़ाव भरता है।

आदिवासियों के सामाजिक व सांस्कृतिक संरचना की निर्मिति ही ऐसी हुई है कि जिसमें उनके कोई व्रत-अनुष्ठान, पर्व-त्यौहार, शादी-ब्याह आदि प्रकृति के सान्निध्य के बिना सम्पन्न नहीं होते। उनकी प्राचीनतम और प्रकृतिनिष्ठ संस्कृति ही आज उनके अस्तित्व का आधार है। "नारायण सिंह जी उइके" इस संदर्भ में लिखते हैं, **"आदिवासियों की संस्कृति और उनके विकास का संबंध निकट का है। आदिवासियों को संगठित करने की शक्ति उनके सांस्कृतिक अधिष्ठान में ही है।"**[७] यह कथन दर्शाता है कि आदिवासियों की संस्कृति उनकी विशिष्टता का आधार है। उनकी संस्कृति प्रकृति के साहचर्य से निर्मित होकर प्रकृति के संरक्षण तक पहुँचती है। लेखिका सांस्कृतिक अनुष्ठानों में प्रकृति के प्रति मोह का वर्णन पारिवारिक परिप्रेक्ष्य में करती

है. "**'ओर एरा' के सदस्यों के साथ मायके से विदा होकर ससुराल जाते समय गाँव की सीमा लाँघने से पहले आम के एक पेड़ पर साकी सुतम को सात बार लपेटकर बाँधा मेंझारी ने और अपनी जन्मभूमि, अपनी देसाउलि, अपनी माँ बुरू को हमेशा याद रखने का वादा किया।**"[८] यह वादा करना एक परंपरा का निर्वाह मात्र ही होता है अन्यथा कोई आदिवासी अपनी जन्मभूमि, अपनी देसाउलि तथा "माँ बुरू" को कैसे भुला सकता है? इस प्रकार प्रकृति आदिवासियों के जीवन में, धर्म-संस्कृति, जातकर्म, शादी-विवाह से लेकर मृतक संस्कार तक में उपस्थित है।

वन्य जीवन में जंगली जानवरों का निवास भी स्वाभाविक है। जंगल तो जंगल है। वह सबके लिए है। इसीलिए आदिवासियों को प्रकृत्या कुछ जानवरों से इतना लगाव हो जाता है कि वे एक-दूसरे का कभी अहित नहीं करते परंतु कुछ जानवरों से हमेशा सतर्क रहने की आवश्यकता होती है। जंगल में शेर, भालू, चीते आदि ऐसे हिंसक पशु होते हैं जो कभी भी इन पर हमला कर सकते हैं। अतः आदिवासियों को उनकी प्रकृति तथा स्वभाव के बारे में भी जानना आवश्यक होता है। उपन्यास में कई जगहों पर लेखिका ने वन्य पशुओं तथा आदिवासियों के मध्य अंत:संबंध का अत्यंत सूक्ष्मता से वर्णन किया है। उदाहरण के लिए, मचान पर बैठा-बैठा जाम्बीरा सोच रहा है, **"दो तीन दिन से बारिश नहीं हुई है। पर टर्राते चोके (मेंढक) और सामने पेड़ों के झुरमुट में यहाँ-वहाँ झुंड में टिमटिमाते इपिपियुंग (जुगनू) बारिश का संकेत तो दे रहे हैं।**"[९] अर्थात प्राकृतिक दैनंदिन कार्यों और आपदाओं-विपदाओं का पूर्वाभास कराने में जीव कितना सशक्त माध्यम बनते हैं। आज विज्ञान भी यह मानता है कि पशु-पक्षियों में भूकंप आदि प्राकृतिक आपदाओं को भाँपने का सामर्थ्य हमसे कई गुना अधिक होता है। चींटियों का असमय बिलों से बाहर निकल आना या पक्षियों का बेवजह चहचहाना इन घटनाओं का संकेत देता है। जाम्बीरा को इन जानवरों से प्राकृतिक ही नहीं बल्कि अप्राकृतिक दुर्घटनाओं की भी जानकारी मिलती है। हाथियों के झुंड द्वारा उसके फसल तथा परिवार में होने वाली त्रासदी का संकेत उसे पहले ही होने लगता है। **"ये आज इतने सारे सियार एक साथ फें-फें-फें की विचित्र सी आवाज़ करते हुए इसी टोले के आसपास क्यों उछल-कूद करते फिर रहे हैं? कहीं कोई अपशगुन तो नहीं होने वाला?"**[१०] क्योंकि वही सियार रोज़ पेट भर जाने के बाद चुपचाप खिसक लेते हैं और दूर जाकर हुआँ-हुआँ करते हैं, परंतु आज उनकी बोली विचित्र है, यानी कोई अनहोनी होने वाली है। उनके लिए ये संकेत कोई वहम नहीं होते। ये घटनाएँ उनके और जीव-जंतुओं के मध्य पारस्परिक संबंध को दर्शाती है।

उत्सवप्रिय आम आदिवासी प्रकृति की तरह सहज, सरल, उदार, संकोची, धीर-वीर और अपने सीमित संसार में सिमटी-सिकुड़ी पर परम संतुष्ट जन-जाति है। जंगल और ज़मीन उसके लिए शानो-शौक़त की बात नहीं बल्कि उनमें उनके प्राण बसते हैं। इसके सिवा उन्हें किसी और स्वर्ग की चाह नहीं है। उपन्यास में महुआ माजी ने एक लंबे विवरण के साथ आदिवासियों और प्रकृति के रिश्ते को दिखाया है। जंगल और जंगल के सम्पूर्ण परिवेश के साथ इनके संबंध को बहुत गहराई से चित्रित किया है। वेश-भूषा, खान-पान, पर्व-त्यौहार, नृत्य-गीत, पूजा-पाठ, अर्थात इनके जीवन का कोई भी पक्ष हो, लेखिका की नज़रों से बचा नहीं है। कुछ आलोचकों ने इस वर्णन को बहुत लंबा होना ज़रूर बताया है, परंतु उन्होंने भी स्वीकार किया है कि, **"रीति-रिवाजों और विश्वासों के वर्णन की अतिरंजना उपन्यास के आकार को तो बढ़ा देती है, पर विस्तार से ही सही, आदिवासी जीवन को लगभग हर कोण से कह गई है।"**[११] इसी तरह अमरेन्द्र किशोर अपने लेख 'मानवीय सरोकारों का शोकपत्र' में लिखते हैं कि **"कुदरत के तमाम अवयव चारों ओर पसरे हैं। पाठक डूब जाता है महुए की गंध और बहकती-बरगती हवाओं में. बासी भात और छतरी की तरह फैले हुए महुआ के पेड़, मांदर और नगाड़े की थाप, गीतों के मधुर बोल और युवा जोड़ों का प्यार... इस जादुई माहौल में लेखिका पाठकों को भी वहीं होने का अहसास दिलाती है।"**[१२] यह सही है कि विभिन्न जन-जातियों पर केन्द्रित अब तक दर्जनों उपन्यास प्रकाश में आ चुके हैं पर कहीं भी इतनी सूक्ष्मता के साथ आदिवासियों के रहन-सहन, रीति-

रिवाज तथा प्रकृति से उनके संबंध का विवेचन नहीं किया गया है। इस विषय में यह चित्रण भी इसकी अप्रतिमता में योगदान देता है।

"वो ऐसे की पहले यह है सारा इलाका इन हथियारों की विचरण स्थलीहुआ करता था। ओडिशा के सिमिलिपाल जंगल से लेकर सारंडा के समठा रेंज से होते हुए जमशेदपुर के दलमा पहाड़ तक मौसम के अनुरूप भोजन आदि की उपलब्धता के अनुसार ही आते जाते रहते थे अब जब उनके मार्ग में इस तरह की बाधाएं आने लगी तो ये रास्ता भटककर जहा तह उत्पात मचाने लगे दलमा पहाड़ और उसके आसपास के इलाके के ग्रामीण तो इन जंगलों हथियारों से त्रस्त हो चूके हैं"।[१३]

दोपहर को टेलिंग डैम के नजदीक तालाब में नहाते हुए एक व्यक्ति ने कहा था आदित्य श्री- से आज कल सालो भर हमारे तालाब पानी से लबालब रहते है मगर यहाँ का पानी बहुत भारी हो गया है सर डुबाओ तो बाल मोटे लगते हैं साबुन घिसते जाओ.. घिसते जाओ.. झाग ही नहीं होता ।

"उसकी बातें सुनकर सगेन के चेहरे पर सूखी सी अर्थपूर्ण मुस्कुराहट बिखर गई बाद में कहा था आदित्य श्री से, टेलिंग डैम से रिस रिसकर अंदर की ही अंदर आता है यूरेनियम के कचरे का जहरीला पानी। तालाब सूखेगा कैसी? अगर किसी के पांव में घाव हो ओर पांव टेलिंग डैम के गीले कचरे में पड़ जाए तो साल भर लग जाएगा उस घाव को सूखने में। ।...."[१४]

एक दिन नाले की तस्वीर लेते पत्रकार को एक मछुआरा मिला तो उसने अपना दुखड़ा रोना आरंभ किया पहले कितनी मछलियाँ हुआ करती थी इधर जमशेदपुर के बाजार में बेचकर भी पैसा कमाए हैं मैंने अब तो घरवाले भी यहाँ की मछली नहीं खाना चाहते"।

क्यों?"

"क्योंकि जहरीली हो गई है यहाँ की मछलिया खाने से पीठ में ऐंठन होती है जी भी मिचलाता है।वैसे मछलियों की मात्रा काफी घट गई है आजकल। जो गिनी चुनी मछलियां हैं, उनमें से ज़्यादातर बड़ी अजीब सी दिखती है। उनकी मुंडी बहुत मोटी होती है और देह पतली। ऐसी मछलियां आपको मरंगगोड़ा इसके अलावा और कही नहीं दिखेंगी साहब! कही नहीं नाले के आसपास पाए जाने वाले सांपों का भी यही हाल है पतली देह और बड़ा सा सिर।कितने ही सांप, मेढक, बिच्छू मरते रहते हैं जब तब मगर हम जिन्दा है साहब। अभी भी जिंदा है। जाने कब तक रहेंगे। खांसते खांसते दम बंद होने लगता है मेरा। कंपनी की डिस्पेन्सरी में दिखाया। कहते है टीबी है। ठीक हो जाएगा। पर मैं जानता हूँ कोई भी नहीं बचा इस रहस्यमयी टीवी में हमारे मरंगगोड़ा में..."वह मछुआरा फफक फफककर रोने लगा। सगेन ने उसके कंधे पर हाथ रखा पत्रकार ने उन तमाम दृश्यों को मैसममा दो अपने विडिओ कैमरे में कैद कर लिया।

"वह व्यक्ति टीवी से नहीं कैंसर से पीड़ित हैं। फेफड़े का कैंसर हुआ है इसे। तीस पैतीस साल की उम्र में कितना बूढ़ा दिखने लगा है देखा आपने?खदान में मजदूरी करने का नतीजा!सांस में लगातार रेडॉन गैस जाता रहा हैन!कंपनी के डॉक्टर टीवी कहकर भरमाते रहते है इन्हें। भी ठीक नहीं कर पाते एक भी मरीज को। मगर जाकर देख लीजिये। कंपनी के रिकॉर्ड में कैंसर की एक भी मरीज का नाम दर्ज नहीं। ऑक्यूपेशनल डिजीज मुआवजा देने की डर से कैन्सर को टीवी कहकर चला रहे हैंवे..." ग्रामीण से अलग हटकर, राह चलते सगे ननेकैमरे के सामने आदित्य श्री को 'बाइट'दी।

कैमरे के पीछे से आदित्य नें सवाल किया- "आपको कैसे पता है की यह टीबी नहीं कैन्सर है?"

"हमारे यहाँ आये दक्षिण भारतीय परमाणु वैज्ञानिक मिस्टर नायर ने कहा है। गुजरात से आये डॉक्टरों ने विकिरण जनित बीमारियों पर काम करने वाले वैज्ञानिक डॉक्टर दंपति ने भी तो कहा था आप ने सुना नहीं?आप इस बारे में मिस्टर नायर का वक्तव्य क्यों नहीं रिकॉर्ड करलेते हमारी मदद करेंगे ही तो आए हैं वे यहाँ।"

"वे तो दिन भर घूम घूमकर अपने परीक्षणों में ही लगे रहते हैं। मैंने सोचा था, पहले वे अपना काम निपटा लें फिर उन्हें पकड़ूंगा..."
मगर सगेन के आग्रह करने पर उन्हें उसी दिन उस परमाणु वैज्ञानिक की राय रिकॉर्ड कर ली।
के वैज्ञानिकों ने माना है की स्वास द्वारा रेडियोधर्मी तत्व जब मज़दूरों के फेफड़ों में पहुंचता है। तब उन्हें फेफड़ों का कैंसर होता हैं। 1546 से जर्मनी के इतनी वर्ग में खनन मज़दूरों की मौत फेफड़े की रहस्यमय शशक बीमारी से हो रही थी। 1887 में जाकर यह पता चला की उनमें से अधिकतर मौत फेफड़े के कैंसर के कारण हुई थी वैज्ञानिको ने यह पता लगा लिया कि यूरेनियम खनन इस रेडियोधर्मी से होता है तिथि और स्थान का उल्लेख करते हुए मिस्टर नायर अपनी बात रखने लगे।
आदिवासी जिन इलाकों में रहते हैं वो आमतौर पर बीहड़ सुदूर क्षेत्र है।जहा खनीज बहूतायत में मिलते हैं।इस क्षेत्र की धरती के गर्भ में यूरेनियम बॉक्साइड, लोहा और कोयला जैसे बहुमूल्य खनिजों अटे पड़े हैं। पूंजी के ढेर पर बैठी ताकतों की दृष्टि इन खनिज संपदाओं की ओर लगातार लगी रहती है इसीलिए विकिरण की खतरे की अनदेखी करते हुए धड़ल्ले से यूरेनियम खनन हो रहा है ओर न्यूक्लियर प्लांट लगाए जा रहे हैं। हिंदी साहित्य में यूरेनियम बिक रण की समस्या को केंद्र में रखकर रचा गया महुआ माजी का उपन्यास "मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ" वाकई एक धमाकेदार सूचना के रूप में उपस्थित हुआ। उपन्यास महुआ माझी के चार वर्ष की शोध कार्य का परिणाम है निसंदेह एक खोजी पत्रकार और गंभीर शोधार्थी की तरह झारखंड के बीहड़ जंगलों ओर जापान अमेरिका के परमाणु संयंत्रों का जायजा लेकर उन्होंने विषय से जुड़ी हर छोटी बड़ी ज़रूरी जानकारी को संजोया है। समाज शास्त्री,मानवशास्त्रीय और पर्यावरणीय सो ध पूर्ण समझ से लिखी गई यह झारखंड की यूरेनियम खदानों से निकलने वाले विकिरण, प्रदूषण और उसके बीच आदिवासियों के विस्थापन की पीड़ा को व्यक्त करती है यूरेनियम ओके रेडीएशन और उससे उपजे स्वस्थ्य संबंधी दुष्प्रभावों ने पूरी दुनिया का ध्यान खींचा है। उपन्यास में बिना स्की व्यापक खतरों की ओर संकेत करते हुए महुआ माजी लिखती हैं कि-"परमाणु संयंत्रों में एक हजार मेगावॉट बिजली पैदा करने से करीब सत्ताईस किलोग्राम रेडियोधर्मी कचरा उत्पन्न होता है और उसे निष्क्रिय होने में एक लाख साल से भी ज्यादा का वक्त लग सकता है।"
उपन्यास की कथा का आरंभ सात सौ पहाड़ियों के जंगल में रहने वाले 'हो'आदिवासियों के प्रतिनिधि 'जाम्बीरा' से होता है।जाम बीरा की पीढ़ी जंगल और प्रकृति के साथ अपना जीवन व्यतीत करते आये थे परन्तु बाहरी लोगों के आगमन और खोजों के बाद उनका जीवन पूर्ण रूप से बदल गया उनके भोलेपन के कारण वह निकट आते संकट को भांप न सकें और उस भयावह संकट का अनजाने ही शिकार होते जा रहे है। उन्हें बहुत देर से इस खतरे का पता चलता है। जब विकिरण और प्रदूषण से अत्यधिक आदिवासी प्रभावित हो चुके होते हैं मरंगगोड़ा मैं लोहे की खदान से यूरेनियम खदान तक शामिल हैं। स्वाभाविक ही इसके कारण विकिरण और वैकल्पिक मॉडल की बेहद सार गंभीर ता चर्चाएं समाहित की गई है।महाराष्ट्र अनुरोध करता है।कि-**"यूरेनियम को धरती के भीतर ही पड़े रहने दो। उसे मत छेड़ो वरना सांप की तरह वह हम सबको डस लेगा।"[१५]**
निष्कर्ष:-निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है की इन उपन्यासों में न केवल आदिवासियों के विस्थापन और पर्यावरण पर गहराते संकट की ओर हमारा ध्यान खींचा गया। बल्कि विकास की पूँजीवादी मॉडल की गंभीर विसंगति को भी पूरी विश्वसनीयता तटस्थता से विश्लेषित किया गया है। जंगलों की अंधाधुंध कटाई, उत्खनन हुआ उत्सर्जन द्वारा बढ़ रहे प्रदूषण की वजह से आदिम मानव का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है क्योंकि जिस प्रकार पानी के बिना मछली का कोई अस्तित्व नहीं, उसी प्रकार जंगलों के बिना आदिम मानम का अस्तित्व न के बराबर है। नई परिस्थितिकीय सभ्यता, वैज्ञानिक प्रगति यहाँ तकनिकी विकास की विरोधी नहीं वस इनके अंधा धुंध दुष्प्रयोगो की विरोधी हैं।

संदर्भ सूची:
१. आदिवासी कौन, स० रमणिका गुप्ता, लेख डा० विनायक तुमराम, पृ० 27
२. 'मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ', महुआ माजी, राजकमल प्र०, पृ० 12
३. वही, पृ० 13
४. 'मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ', महुआ माजी, राजकमल प्र०, पृ० 13
५. 'मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ', महुआ माजी, राजकमल प्र०, पृ० 56
६. वही पृ० 12
७. 'आदिवासियों की अब तक की साहित्य यात्रा', सं० रमणिका गुप्ता,2008, पृ 30 से उद्धृत
८. 'मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ', महुआ माजी, राजकमल प्र०, पृ० 36

९. 'मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ', महुआ माजी, राजकमल प्र०, पृ० 44
१०. 'मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ', महुआ माजी, राजकमल प्र०, पृ० 44
११. उपन्यास में शोध, क्षितिज शर्मा, समयांतर,जून-2012,पृ० 65
१२. मानवीय सरोकारों का शोकपत्र, अमरेन्द्र किशोर, हंस, नव० 2012 पृ० 75
१३. नीलकंठ हुआ', महुआ माजी, राजकमल प्र०, पृ० 185
१४. नीलकंठ हुआ', महुआ माजी, राजकमल प्र०, पृ० 186
१५. मरंगगोड़ा नीलकंठ हुआ', महुआ माजी, राजकमल प्र०, पृ० 402